इकाई 5 काव्य हेतु एवं काव्य-प्रयोजन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 काव्य-हेतु : अभिप्राय एवं आयाम

5.2.1 प्रतिभा : स्वरूप एवं प्रकार

5.2.2 व्युत्पत्ति : अर्थपरक परिप्रेक्ष्य

5.2.3 अभ्यास : तात्पर्य एवं महत्व

5.3 काव्य-प्रयोजन : आशय और परिधि

5.3.1 काव्य-प्रयोजन : संदर्भ संस्कृत साहित्य

5.3.2 काव्य-प्रयोजन : संदर्भ पाश्चात्य चिंतन

5.2.3 काव्य-प्रयोजन : संदर्भ हिंदी साहित्य

5.4 सारांश

5.5 अवधारणात्मक शब्द

5.6 उपयोगी पुस्तकें

5.7 बोध प्रश्न

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप :

- काव्य हेतु और काव्य प्रयोजन के अभिप्राय और उनके आयामों को समझ सकेंगे,
- काव्य के हेतुओं में प्रतिभा के स्वरूप और प्रकार से परिचित हो सकेंगे,
- काव्य-प्रयोजन के स्वरूप और प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- साहित्य-सर्जना में व्युत्पत्ति और अभ्यास की उपयोगिता तथा महत्व से अवगत हो सकेंगे,
- काव्य हेतु और काव्य प्रयोजन के संबंध में संस्कृत आचार्यों के मतों से परिचित हो सकेंगे, और
- काव्य हेतुओं और काव्य प्रयोजनों से संबंधित पाश्चात्य तथा हिंदी के आचार्यों एवं समीक्षकों के चिंतन से अवगत हो सकेंगे।

BHDC-106.indd 62 19-03-2021 08:51:34

5.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि किसी भी वस्तु के निर्माण में कुछ आवश्यक साधन होते हैं जिनके अभाव में उस वस्तु का सृजन संभव नहीं हो सकता। जिन साधनों या कारणों से वस्तु का निर्माण होता है, वस्तुतः वे साधन (हेतु) कहलाते हैं। काव्य का साहित्य की सर्जना के लिए कुछ आवश्यक का कारण (हेतु) होते हैं। इनकी संख्या तीन मानी गई है – प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास। इन हेतुओं में प्रतिमा का विशेष महत्व है क्योंकि इसके बिना मौलिक या नवीन रचना नहीं की जा सकती है। प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास नामक अन्य दो हेतुओं के योग से रचना में व्यापकता और उत्कृष्टता आती है। किसी प्रयोजन से ही व्यक्ति कार्य करने की ओर अग्रसर होता है। ऐसा देखा जाता है कि मंदबुद्धि भी बिना प्रयोजन किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है। प्रयोजन से एकाग्रता और संलग्नता आती है। प्रयोजन से रचनाकार और भावकों की मनः स्थिति भी समझी जा सकती है।

5.2 काव्य-हेतु : अभिप्राय एवं आयाम

काव्य-हेतु से अभिप्राय काव्य रचना के मूल कारणों से है। भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य-निर्माण के तीन हेतु स्वीकार किए हैं – (1) प्रतिभा (2) व्युत्पत्ति, और (3) अभ्यास। काव्य हेतुओं के संबंध में आचार्यों में दो वर्ग हैं। एक वर्ग के आचार्य काव्य रचना के लिए प्रतिभा को ही हेतु के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं तथा अन्य दो हेतुओं व्युत्पत्ति और अभ्यास को सहायक कारण मानते हैं। भामह, रूद्रट वामन पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों की ऐसी मान्यता है किन्तु दूसरे वर्ग के आचार्य जिनमें दण्डी, वाग्मट्ट, मम्मट आदि प्रमुख हैं, काव्य-रचना के लिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास– तीनों को आवश्यक मानते हैं।

5.2.1 प्रतिभा : स्वरूप एवं प्रकार

प्रतिभा वह शक्ति है जिसके द्वारा मौलिक और अपूर्व कार्य संपन्न होते हैं। नवीन उद्भावनाओं और चिंतन की जन्मदात्री प्रतिभा ही है। भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा के स्वरूप और मेदों का गंभीर एवं सूक्ष्म निवेचन किया गया है। अब हम प्रतिभा के संबंध में भारतीय आचार्यों के मतों का अनुशीलन करेंगे।

भामह (छठी शताब्दी वि.) : भामह भारतीय काव्यशास्त्र के आदि आचार्य माने जाते हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यालंकार' है, जिसमें प्रतिभा के संबंध में उनके मौलिक विचार व्यक्त हुए हैं। आचार्य भामह प्रतिभा को काव्य-रचना का प्रमुख हेतु मानते हैं। प्रतिभा के द्वारा ही श्रेष्ठ काव्य-रचना हो सकती है किंतु उनके मतानुसार यह प्रतिभा किसी विरले में ही दृष्टिगत होती है –

जड़बुद्धि भी गुरु के उपदेश से शास्त्र का ज्ञाता हो सकता है किंतु काव्य-रचना तो किसी प्रतिभावान से ही हो सकती है। इस प्रकार आचार्य भामह के अनुसार दोषरहित श्रेष्ठ काव्य की रचना का प्रमुख हेतु प्रतिभा है।

दण्डी (सातवीं शताब्दी वि.) : आचार्य दण्डी के प्रतिभा संबंधी विचार उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यादर्श' में मिलते हैं। आचार्य दण्डी ने काव्य-रचना के लिए तीनों काव्य हेतुओं – प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को आवश्यक माना है। उनकी दृष्टि में केवल प्रतिभा से ही काव्य-सर्जना नहीं हो सकती है। काव्य-रचना के लिए प्रतिभा के साथ शास्त्र ज्ञान (व्युत्पत्ति) तथा अभ्यास की आवश्यकता पर दण्डी ने विशेष बल दिया है।

नैसर्गिक (जन्मजात) प्रतिभा, निर्मल शास्त्र ज्ञान तथा निंरतर अभ्यास काव्य के कारण (हेतु) हैं। किंतु दण्डी उन्हें भी काव्य-रचना के लिए निरूत्साहित नहीं करते जिनमें जन्मजात प्रतिभा नहीं है। यदि ऐसा व्यक्ति अध्ययन और काव्य-रचना का अभ्यास करता है तो उस पर सरस्वती की कृपा होती है और वह काव्य-रचना में समर्थ हो जाता है।

वामन (8वीं शताब्दी) : आचार्य वामन ने प्रतिभा को कविता का मूल या बीज माना हैं किन्तु अन्य दो काव्य हेतुओं को भी महत्व प्रदान किया। पूर्व रचित काव्यों का अनुशीलन, काव्यज्ञ के लिए आवश्यक है। उन्होंने अवधान (चिन्त की एकाग्रत), एकांत स्थान तथा ब्राह्यमुहूर्त को काव्य-रचना के लिए उपयोगी माना है।

इस प्रकार वामन प्रतिभा को महत्वपूर्ण काव्य हेतु मानते हुए व्युत्पत्ति और अभ्यास पर विशेष बल देते हैं।

रूद्रट (नवम शताब्दी ई. का आरंभ) : आचार्य रूद्रट ने प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी काव्य हेतुओं में महत्व दिया है। प्रतिभा के रूद्रट ने दो भेद भी किए हैं– सहजा, जो जन्मजात होती है तथा उत्पाद्या जो शास्त्र तथा लोक से अर्जित की जाती है। रूद्रट प्रतिभा को काव्य का मूल हेतु स्वीकार करते हैं और उसे ही शक्ति मानते हैं।

आनंदवर्द्धन (नवीं शताब्दी वि.) : आचार्य आनंदवर्द्धन के अनुसार प्रतिभा कविता का मूल है। व्युत्पत्ति को भी उन्होंने महत्व दिया है। उनका मत है कि व्युत्पत्ति के अभाव में कवि की रचना में अनेक दोष आ जाते हैं। किंतु प्रतिमा से ये दोष कम हो जाते हैं। इस प्रकार उन्होंने प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

राजशेखर (विक्रम की नवीं शताब्दी का मध्य) सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'काव्य मीमांसा' के रचयिता आचार्य राजशेखर ने काव्य हेतुओं की विवेचना करते हुए प्रतिभा और व्युत्पत्ति को प्रमुख काव्य हेतु स्वीकार किया है। इन दोनों के योग से कविकर्म में श्रेष्ठता आती है। उन्होंने प्रतिभा और व्युत्पत्ति को केन्द्र में रखकर कवि के दो प्रकार विकसित किए हैं। प्रतिमा-सम्पन्न काव्य कवि और व्युत्पत्ति युक्त कविशास्त्र कवि होता है अभ्यास को वह बाह्य काव्य हेतु मानते हैं। राजशेखर शक्ति को काव्य का मूल मानते हैं। यह शक्ति प्रतिभा का पर्याय नहीं है।

मम्मट (ग्यारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) : आचार्य मम्मट अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में काव्य हेतुओं में शक्ति (प्रतिभा) निपुणता (व्युत्पत्ति) और अभ्यास की विवेचना करते हैं। उन्होंने शक्ति (प्रतिभा) को कवित्व का बीज कहा है – शक्तिः कवित्व बीज रूपः यां विना काव्य न प्रसोत्'' (*काव्य प्रकाश* 1/13) किन्तु : निपुणता और अभ्यास को शक्ति (प्रतिभा) के साथ सम्मिलित मानते हैं।

पंडितराज जगन्नाथ (16वीं शताब्दी) : इन्होंने काव्य हेतुओं में केवल प्रतिभा को मान्यता दी है इसीलिए उन्हें प्रतिभावादी आचार्य भी कहा जाता है। उनकी मान्यता है ''प्रतिभैव केवल कारणम्'' (रस गंगाधर)। इस प्रकार वे व्युत्पत्ति और अभ्यास किसी-किसी में बाल्यावस्था से ही काव्य-रचना की क्षमता दिख जाती है। यद्यपि आचार्य जगन्नाथ की इस मान्यता का खण्डन भी हुआ है। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने उनके मत को अतिवादी माना है क्योंकि केवल प्रतिभा काव्य-निर्माण का हेतु नहीं है।

BHDC-106.indd 64 19-03-2021 08:51:34

उपर्युक्त विवेचन से आप लोगों ने यह जान लिया कि काव्य हेतुओं में प्रतिभा मुख्य है और सभी आचार्यों ने इसे काव्य-रचना में प्रमुखता प्रदान करते हुए इसकी अनिवार्यता स्वीकार की है। वस्तुतः साहित्य-सर्जना की यह मूल शक्ति है।

प्रतिभा के स्परूप पर कुछ आचार्यों ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है जिनमें आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त, भट्ट तौत आदि प्रमुख हैं। आनन्दवर्द्धन मानते हैं कि प्रतिभा वह शक्ति है जिसके द्वारा प्राचीन विषयों को भी नवीन रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने प्रतिभा के स्वरूप का निरूपण करते हुए उसे 'अपूर्ववस्तु निर्माण क्षमा' कहा है। अपूर्व वस्तुओं का निर्माण केवल प्रतिभा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसे 'नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा' माना है। आचार्य महिम भट्ट ने कवि की प्रतिभा को शिव के तृतीयनेत्र से उपमित किया है। जिसकी शक्ति से वह त्रिलोक में स्थित भावों का साक्षात्कार करता है। आचार्य पण्डित जगन्नाथ प्रतिभा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं– साच काव्यघटनानुकूल शब्दार्थो परिस्थितिः। अर्थात् प्रतिभा के द्वारा ही काव्य में वर्णनीय घटना के लिए शब्द और अर्थ की समुचित योजना होती है।

प्रतिभा के प्रकार– आचार्यों ने प्रतिभा के भेदों का भी विवेचन किया है। आचार्य रूद्रट ने शक्ति (प्रतिभा) के दो भेद किए हैं– **(1) सहजा (2) उत्पाद्या** – 'सहजोव्पाद्या सा द्विधा भवति।'

उनके अनुसार, सहजा प्रतिभा जन्मजात होती है और उत्पाद्या अध्ययन आदि से अर्जित होती है। राजशेखर प्रतिभा के दो भेद स्वीकार करते हैं– कारयित्री और भावयित्री। इनमें से प्रथम का संबंध कवि कर्म से है और दूसरे का संबंध आलोचना कर्म से है। उन्होंने कारयित्री प्रतिभा के पुनः तीन प्रकार बतलाए हैं– **(1) सहजा, (2) आहार्या, और (3) औपदेशिकी।**

1) **सहजा प्रतिभा** : यह पूर्वजन्म के संस्कारों से प्राप्त होती है और इस जन्म में अल्प प्रयत्न के उद्दीप्त हो जाती हैं।

2) **आहार्या प्रतिभा** : यह प्रतिमा वर्तमान जीवन के संस्कारों से उत्पन्न होती है। अतः इसके लिए अधिक अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।

3) **औपदेशिकी प्रतिभा** : देवता, गुरु, तंत्र, मंत्र आदि से उद्बुध प्रतिभा औपदेशिकी है। उपदेश आदि से प्राप्त होने के कारण इसी औपदेशिकी कहते हैं। इसका संबंध वर्तमान जीवन से रहता है।

इसका संबध वर्तमान जीवन से रहता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने प्रतिभा के दो प्रकार निरूपित किए हैं–

(1) **सहजा और (2) औपाधिकी।** स्वतः (अपने आप) स्फुरित होने वाली प्रतिभा 'सहजा' है।

(2) मंत्र और देवाराधना आदि से प्राप्त होने वाली प्रतिभा औपाधिकी है। पण्डितराज जगन्नाथ भी प्रतिभा में विविधता या अनेक रूपता का उल्लेख करते हैं। उनकी मान्यता है कि सभी कवियों में एक प्रकार का ही प्रतिभा नहीं देखी जाती है। सभी की उद्भावनाएँ पृथक्-पृथक् होती हैं और इसका कारण प्रतिभा की विविधता है।

BHDC-106.indd 65 19-03-2021 08:51:34

5.2.2 व्युत्पत्ति : अर्थपरक परिप्रेक्ष्य

व्युत्पत्ति शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'उत्पत्ति' शब्द से बनता है। इसका तात्पर्य यह है कि लोक (संसार) में जो कुछ भी उत्पन्न है, उसका विशेष ज्ञान होना व्युत्पत्ति है। वास्तव में इसके अंतर्गत लोक-व्यवहार और प्रकृति आदि विभिन्न विषयों का ज्ञान समाहित रहता है। इसीलिए व्युत्पत्ति को बहुज्ञता भी कहा गया है। यह अर्थ काव्यशास्त्र के सभी आचार्यों द्वारा मान्य है। आचार्य मम्मट ने इसे निपुणता की संज्ञा दी है।

व्युत्पत्ति के दो भेद किए गए हैं– **शास्त्रीय और लौकिक।**

शास्त्रीय व्युत्पत्ति अध्ययन से प्राप्त होती है तथा लौकिक व्युत्पत्ति लोक के अनुभव एवं निरीक्षण से। लोक के निरीक्षण और शास्त्रों के मनन-चिंतन तथा काव्य-परंपरा का गंभीर अध्ययन करने से कवि में निपुणता आती है और उसका अनुभव जन्य ज्ञान भी विस्तृत होता है जिसके माध्यम से वह काव्य को जीवन और समाज के निकट लाने में समर्थ होता है।

व्युत्पत्ति का क्षेत्र असीमित होता है क्योंकि लोक और शास्त्र की कोई सीमा नहीं मानी गई। व्युत्पत्ति का अधिकाधिक ज्ञान होने से काव्य-दोषों में कमी आती हैं। व्युत्पत्ति के ज्ञात के अभाव में काव्य में असंगतियाँ और अनौचित्य आ सकता है। काव्य को उत्कृष्ट, दोषरहित और सहृदय-आह्लादक बनाने के लिए व्युत्पत्ति का यथेष्ट ज्ञान होना आवश्यक हैं।

5.2.3 अभ्यास : तात्पर्य एवं महत्व

काव्य हेतुओं में 'अभ्यास' महत्वपूर्ण कारक है। आचार्य राजशेखर के अनुसार, निरंतर प्रयास करना अभ्यास है। काव्य-रचना की पुनः प्रवृत्ति अभ्यास कहलाता है। सभी आचार्यों ने अभ्यास को प्रतिमा को पोषक और संस्कारक माना है। आचार्य दण्डी का मत है कि अभ्यास पूर्वक वाणी की उपासना करने पर अवश्य ही वह अनुग्रह करती हैं। यह तो निश्चित है कि श्रेष्ठ कवियों (साहित्यकारों) से शिक्षा प्राप्त कर (उनके अनुभव से अवगत होकर) काव्य-रचना का अभ्यास करने से काव्य में उत्कृष्टता आती है तथा काव्य गुणों से समृद्ध और दोषों से रहित हो जाता है। यह माना जाता है कि अभ्यास के अभाव में प्रतिभा भी कुंठित होने लगती है। अभ्यास से काव्य में पूरा निखार आता है। कवि की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ती है तथा भावाभिव्यक्ति सौष्ठवपूर्ण, माधुर्ययुक्त और प्रभावशाली होती है। आचार्य हेमचंद्र (काव्यानुशासन) मानते हैं कि अभ्यास से प्रतिमा संस्कारित होकर कामधेनु जैसी हो जाती है और काव्यामृत प्रदान करती है। 'अभ्यास संस्कृता हि प्रतिभा काव्यामृत कामधेनुर्भवति।''

5.3 काव्य-प्रयोजन : आशय और परिधि

संसार की प्रत्येक रचना उद्देश्यपूर्ण है। यहाँ कुछ भी प्रयोजन रहित नहीं होता। काव्य रचना का जीवन और जगत से घनिष्ठ संबंध है, अतः उसके भी कुछ प्रयोजन हैं। काव्य-रचना में कवि के उद्देश्य ही प्रयोजन के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा काव्य प्रयोजनों पर गंभीरता से विचार किया गया है। आदि आचार्य भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तथा उनके बाद भी काव्य-प्रयोजन पर विचार-विमर्श रहा है। आचार्यों ने कवि और पाठक की दृष्टि से काव्य-प्रयोजन पर विचार किया है। काव्य-प्रयोजनों की परिधि बहुत व्यापक है, इसके अंतर्गत मानव जीवन की बाह्य आवश्यकताएँ और अंतरंग भावनाएँ समाहित हैं।

BHDC-106.indd 66 19-03-2021 08:51:34

पंचम वेद के रूप में मान्य अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में भरतमुनि में नाटक के संदर्भ में जिन प्रयोजनों की चर्चा की है, वे काव्य के लिए भी घटित होते हैं, क्योंकि उस समय तक काव्य और नाटक में भेद नहीं किया जाता था। दोनों की काव्य विद्या रूप में मान्यता थी। तभी तो 'काव्येषु नाटकं रभ्यं' कहा जाता था। आचार्य भरत के द्वारा निर्दिष्ट प्रयोजन इस प्रकार हैं –

धर्म, यश, आयु, बुद्धि, बढ़ाने वाला, हितसाधक तथा लोक-उपदेशक के रूप में नाटक होता है।

भामह : भामह प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप में काव्य-प्रयोजनों पर विचार किया है। यद्यपि उनके काव्य-प्रयोजन संबंधी चिंतन में आचार्य भरत का सीधा प्रभाव दृष्टिगत होता है तथापि उसमें कुछ नवीन तथ्यों का भी समावेश है–

> धर्मार्थकाम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
>
> प्रीतिं करोति कीतिं च साधुकाव्य निबंधनम्।। (*काव्यालंकार,* 1/2)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय), कलानिपुणता, कीर्ति और प्रीति (आनंद) की प्राप्ति को भामह ने काव्य-प्रयोजन के रूप में निर्दिष्ट किया है। उन्होंने आचार्य भरत के द्वारा निर्दिष्ट धर्म और शास्त्र' को धर्म और कीर्ति के रूप में तथा 'बुद्धिविवर्धन' को 'कलानैपुण्य' के रूप में प्रस्तुत किया है। काव्य-प्रयोजन संबंधी चिंतन में भामह ने प्रीति (आनंद की प्राप्ति) को मुख्य प्रयोजन माना है जिससे परवर्ती आचार्यों को विशेष प्रेरणा मिली।

वामन : आचार्य वामन ने दृष्ट और अदृष्ट के रूप में काव्य के दो प्रयोजन स्वीकार किए। इनमें दृष्ट का संबंध आनंद तथा अदृष्ट का संबंध कीर्ति से है। वे काव्य-सृजन को यश (प्रसिद्धि) का सहज साधन मानते हैं। वामन के काव्य-प्रयोजन में सर्जक (कवि) और भावक (सहृदय) दोनों को महत्व दिया है। उन्होंने आचार्य भामह द्वारा निरूपित काव्य-प्रयोजन 'कीर्ति' और प्रीति को अपने काव्य-प्रयोजनों में स्थान दिया है किंतु धर्म और मोक्ष का उल्लेख नहीं किया –

अदृश्य प्रयोजनं कीर्ति हेतु त्वात् (*काव्यालंकार मूलवृत्ति* 1/1/5) अर्थात् सत्काव्य कवि और सहृदय (श्रोता-पाठक) दोनों को आनंद प्रदान करता है, यह दृश्य प्रयोजन है तथा कवि को जीवन काल एवं जीवनोत्तर काल में भी कीर्ति प्रदान करता है – यह अदृश्य प्रयोजन है।

5.3.1 काव्य-प्रयोजन : संदर्भ संस्कृत साहित्य

कुंतक (दसवीं भाती का अंत) : काव्य-प्रयोजनों के विवेचन में आचार्य कुंतक में नवीनता और मौलिकता मिलती है। उन्होंने लोकोत्तर चमत्कार के आनंद को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से बढ़कर माना है। उनकी दृष्टि में यह अंतश्चेतना का चमत्कार पुरुषार्थ चतुष्टय को अतिक्रमित कर देता है।

> चतुर्वर्गफलस्वादमपि अतिक्रम्य तदविदाम्।
>
> काव्यामृत रसेन अन्तश्चमत्कारो वितन्यते।। (*वक्रोक्ति जीवित,* 1/5)

भोजराज ग्यारहवीं शती पूर्वार्द्ध : आचार्य भोजराज ने अपने ग्रंथ 'सरस्वती कंठाभरण' में कीर्ति और प्रीति (आनंद) को काव्य प्रयोजन निरूपित किया है। इनके काव्य प्रयोजन वामन - निर्दिष्ट काव्य-प्रयोजनों से साम्य रखते हैं।

BHDC-106.indd 67 19-03-2021 08:51:34

मम्मटः अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्य प्रकाश' में आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रयोजनों का स्पष्ट विवेचन किया है। उनके काव्य-प्रयोजनों में पूर्व आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट प्रयोजनों का समाहार भी लक्षित होता है। उन्होंने निम्नलिखित छः प्रयोजनों का निर्देश किया है–

(i) **यशे** : यश की प्राप्ति काव्य-रचना का प्रमुख प्रयोजन है। कवि में अपनी रचना द्वारा यश-प्राप्ति की प्रबल कामना होती है क्योंकि यश ही उसे अमरत्व प्रदान करता है। मृत्यु के पश्चात भी वह यशरूपी शरीर से इस जगत में विद्यमान रहता है। वस्तुतः यशः शरीर जरा-मरण से रहित है। आदि कवि वाल्मीकि, कालिदास, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, रसखान, प्रसाद, निराला, पंत आदि अपनी काव्यकृतियों के कारण ही अमर हैं। यह प्रयोजन वैश्विक है। यश की प्राप्ति विश्व के अनेक कवियों का प्रमुख उद्देश्य प्रतीत होता है। यद्यपि इस प्रयोजन को दुर्बलता और मंदता युक्त भी कहा गया है। कविश्रेष्ठ मिल्टन यश प्राप्ति की कामना को उदात्त मनीषियों की अंतिम दुर्बलता कहते हैं। "The last infirmity of noble minds." कविकुल गुरु कालिदास भी 'मंदः कवि यशः प्रार्थी' मानते हैं। जायसी ने लिखा है – 'केहि न जगत जस बेंचा' तथा 'जो यह सुनै कहानी हम्ह सँवरे दुह बोल'। गोस्वामी तुलसीदास के 'होहु प्रसन्न देहु बरदान्' साधु समाज भनित सनमानू आदि कथन यशः प्राप्ति से संबंधित हैं। इससे इस प्रयोजन की व्यापकता और महत्व स्वतः सिद्ध है। कदाचित् मम्मट ने इसीलिए काव्य-प्रयोजनों में 'यश' को प्रथम स्थान दिया हो।

(ii) **अर्थकृते** : अर्थ प्राप्ति भी काव्य का उपयोगी एवं व्यावहारिक प्रयोजन है। अनेक कवियों ने अर्थ-प्राप्ति और आजीविका के लिए काव्य रचनाएँ की हैं। संस्कृत वाणभट्ट जैसे कवियों ने महाराज हर्ष से अपनी रचनाओं पर प्रभूत धनराशि एवं सम्मान प्राप्त किया। राजाश्रय प्राप्त करना भी अर्थकृते ही है। हिंदी का चरण काव्य और अधिकांश रीतिकालीन काव्य, इस प्रयोजन से जुड़ा हुआ है। पुरस्कार और पारिश्रमिक के रूप में आज भी यह प्रयोजन अस्तित्व में है।

(iii) **व्यवहारविदे** : व्यवहार ज्ञान भी काव्य का महत्वपूर्ण प्रयोजन है। काव्य से रचनाकार और पाठक-श्रोता को लोक व्यवहार की शिक्षा मिलती है। काव्य के अध्ययन-अनुशीलन से उस युग के लोगों के मनोभावों, विचारों, आचरण और व्यवहार को भी जाना जा सकता है। काव्य से प्राप्त ज्ञान द्वारा व्यवहार या आचरण में पर्याप्त बदलाव भी देखा जाता है।

शिवतरक्षते : शिवेतर की क्षति अर्थात् अशिव (अमंगल) का नाश तथा अनिष्ट निवारण काव्य का प्रयोजन है। अनेक कवि इस प्रयोजन से काव्य-रचना करते हैं। काव्य में लोक मंगल की व्यवस्था शिवेतर क्षति ही है। इसका स्वरूप भी वैश्विक है। संसार के अनेक देशों में मानव हित के लिए की गई क्रांतियों में कवि और उनकी रचनाओं की प्रेरणा रही है। इसी प्रकार श्रेष्ठ काव्य की रचना का प्रमुख प्रयोजन ही अनिष्ट निवारण है। इसके माध्यम से अनेक लोग अपनी तथा समाज के लोगों की पीड़ा तथा अमंगल का निवारण करते हैं। उदाहरणस्वरूप, हम देख सकते हैं कि **'हनुमान बाहुक'** की रचना तुलसीदास ने अपनी बाहु-पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए की थी और आज भी बहुत-से लोग पीड़ा तथा अन्य कष्टों के निवारण के लिए उसका नियमित पाठ-पारायण करते हैं।

BHDC-106.indd 68 19-03-2021 08:51:35

सद्यः परमिवृत्तये : उत्कृष्ट आनंद की शीघ्र प्राप्ति काव्य का उदात्त प्रयोजन है। आचार्यों ने इस प्रयोजन को काव्य का मूल प्रयोजन स्वीकार किया है क्योंकि काव्य से जो आनंद प्राप्त होता है, वह भाव योग और ब्रलानंदसहोदर है। यह भी माना गया है कि काव्य की रचना और उसके अनुशीलन से जो आनंद प्राप्त होता है वह अनिर्वचनीय है। शीघ्र (अविलंब) प्राप्ति और परमशांति इसकी अन्यतम विशेषता है।

कांता सम्मिततयो : कांता सम्मित में उपदेश केवल काव्य से ही मिलता है। इसमें रस और माधुर्य की प्रधानता होती है तथा शब्द और अर्थ गौण हो जाते हैं। काव्य के उपदेश की मधुरता, प्रियता और ग्राह्यता का प्रमुख कारण यह है कि यह कर्कश नहीं होता अपितु इसका प्रकारांतर से हदय और मन-मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। मूलतः यह व्यक्ति के चिंतन को प्रभावित करता है। उपदेश की तीन पृष्ठियाँ मानी गई हैं (i) प्रभुसम्मित – यह श्रेणी वेद और शास्त्रों की है। यह आदेशात्मक है। इसमें शब्द की प्रधानता होती है, जिस प्रकार प्रभु (राजा) के आदेश की अवहेलना नहीं की जा सकती उसी प्रकार प्रभुसम्मित उपदेश की भी अवहेलना नहीं होती है। (ii) सुहत्सम्मित – यह श्रेणी विशेषतः पुराण ग्रंथों से बंधित है। अर्थ की प्रधानता के कारण इसके उपदेश का अक्षरशः पालन नहीं किया जाता, अपितु उसके आशय (तात्पर्य) का अनुसरण किया जाता है।

कांतासम्मित : यह उपदेश संबंधी काव्य से संबंधित है। इसमें शब्द और अर्थ दोनों का महत्व है। यह उपदेश रस प्रधान होता है। कारण यह है कि काव्य की विषयवस्तु या वर्ण्यवस्तु सुसंघटित होती है कि उसे पढ़कर या सुनकर पाठक प्रभावित होता है तथा उसे कर्तव्यबोध भी होता है। उसमें संग्रह और त्याग का विवके भी उत्पन्न हो जाता है। काव्य के उपदेश से सहत्रथ को राम और रावण के व्यवहारगत अंतर का भी ज्ञान होता है और वह राम आदि की भाँति आचरण करने के लिए प्रेरित होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार्य मम्मट का काव्य-प्रयोजन व्यापक और व्यावहारिक है।

हेमचंद्र (बारहवीं शती) : आचार्य हेमचंद्र द्वारा दिए गए युक्त काव्य हेतुओं – आनंद, यशप्राप्ति और कांतासम्मित उपदेश में आनन्द प्रमुख है क्योंकि इसका संबंध रचनाकार और **सहृदय** (पाठक या श्रोता) दोनों से है, जबकि यश का संबंध केवल कवि का **सर्जक** से तथा कांतासम्मित उपदेश का संबंध सहृदय से होता है।

विश्वनाथ (चौदहवीं शती) : 'साहित्य दर्पण' आचार्य विश्वनाथ का सुपसिद्ध लक्षण ग्रंथ है। उन्होंने अपने काव्य-प्रयोजनों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को महत्व दिया है। इनकी प्राप्ति काव्य के माध्यम से आनंदपूर्वक हो जाती है। वेद और शास्त्रों का प्रयोजन भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति कराना है परंतु इनका अध्ययन और अनुशीलन कष्ट साध्य होता है तथा ये सर्वजन सुर्लभ और बोधगम्य भी नहीं होते हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ : पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य-प्रयोजनों के अंतर्गत कीर्ति, परम आह्लाद, देवताओं की कृपा प्राप्ति आदि का उल्लेख किया है। उन्होंने परम आह्लाद को ब्रह्मानंद स्वरूप स्वीकार किया है। रसानुमूति को वे श्रेष्ठ काव्य प्रयोजन मानते हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित काव्य-प्रयोजनों के समग्र अवलोकन से ज्ञात होता है कि आनंद की प्राप्ति तथा विचारों का परिष्करण ही काव्य के प्रमुख प्रयोजन हैं।

BHDC-106.indd 69 19-03-2021 08:51:35

5.3.2 काव्य-प्रयोजन : संदर्भ पाश्चात्य चिंतन

काव्य के उद्देश्य या प्रयोजन के संबंध में पाश्चात्य कवियों और सभी क्षकों ने गंभीर चिंतन किया है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित काव्य-सिद्धांतों में काव्य-प्रयोजनों की चर्चा मिलती है। धर्म, नीति, सौंदर्य, कला आनंद आदि के परिप्रेक्ष्य में काव्य प्रयोजनों पर विचार किया गया है।

प्लेटो : प्लेटो की धारणा कवि और काव्य के प्रति उदात्त नहीं है। उनके विचारों में एकांगीपन अधिक लक्षित होता है। वे मानते हैं कि काव्य से मिथ्या (कल्पनाप्रसूत) अभिव्यक्ति तथा भावों का उत्तेजन होता है जिससे आदर्श राज्य की व्यवस्था बिगड़ सकती है। प्लेटो उस काव्य को महत्व देते हैं जिसमें नैतिक उपदेश हो और जो राज्य तथा मानव जीवन के लिए उपयोगी हो।

अरस्तू : अरस्तू के काव्य-प्रयोजन संबंधी विचार प्लेटो से भिन्न है। वे प्लेटों के विचारों से सहमत भी नहीं हैं। उन्होंने काव्य से मनोवेगों के उत्तेजन संबंधी प्लेटों के आरोप का अपने विरेचन सिद्धांत में समाधान भी प्रस्तुत किया हैं, अरस्तू की दृष्टि में काव्य का उद्देश्य विवेचन के माध्यम से मनोवेगों या मनोविकारों का भामन एवं परिष्कार करना है। अरस्तू मुख्य रूप से आनंद को काव्य-प्रयोजन मानते हैं।

लोंजाइनस : उदान्त तत्व को महत्व प्रदान करने वाले लोंजाइनस की दृष्टि में भव्यता और उदात्तता की अभिव्यक्ति काव्य का मुख्य प्रयोजन हैं।

दांते : इटली के सुप्रसिद्ध कवि एवं समीक्षक दांते काव्य का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए स्वीकार करते हैं कि काव्य का उद्देश्य अंततः और पूर्णतः व्यक्तियों को दुःख की अवस्था से हटाकर सुख की स्थिति की ओर ले जाना है।

सर फिलिप सिडनी के अनुसार, मानवीय सद्‌गुणों की प्रेरणा काव्य का प्रयोजन है। ड्राइडन आह्लादमयी शिक्षा को काव्य-प्रयोजन मानते हैं। आह्लाद पर उन्होंने विशेष बल दिया है। स्वच्छंदतावादी समीक्षक एस. टी. कालिरिज 'सौंदर्य' के माध्यम से आनंद सिद्धि को काव्य का प्रयोजन मानते हैं। मैथ्यू आर्नाल्ड मनुष्य के आत्मिक विकास और सामाजिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया है। लियो टालस्टाय सुप्रसिद्ध रूसी साहित्यकार और विचारक हैं। उन्होंने काव्य के प्रयोजन के रूप में नैतिकता प्रेमभाव और लोकहित को मान्यता दी है।

5.3.3 काव्य-प्रयोजन : संदर्भ हिंदी साहित्य

हिंदी के मध्यकालीन सुप्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने 'स्वान्तः सुख अर्थात् आत्म आनंदोपलविध' तथा 'कीरति मनिति भूति मलि सोई' सुरसरी सम सब कहँ हित होई' अर्थात् लोकमंगल को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है। हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों और आधुनिक आलोचकों ने काव्य-प्रयोजन के संबंध में चिंतन किया है। रीतिकालीन कवियों के काव्य-प्रयोजन के निरूपण में संस्कृत आचार्यों के ग्रंथों का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

आचार्य सोमनाथ का लक्षण ग्रंथ 'रस पी यूष निधि' है जिसमें उन्होंने कीर्ति, वित्त, विनोद, मंगल और सदुपदेश को काव्य-प्रयोजन स्वीकार किया – कीरति बिन्त विनोद अति अति मंगल को देति।

करै भलो उपदेश नित बहु कविन्त चित चेति।।

कीर्ति, वित्त, मंगल और उपदेश के साथ 'विनोद' को सम्मिलित करना सोमनाथ की मौलिकता है। आचार्य वामन द्वारा निरूपित काव्य-प्रयोजन 'प्रीति' में विनोद का समावेश हो सकता है किंतु यह अपेक्षाकृत अधिक सरल और स्पष्ट है। इसी प्रकार 'अतिमंगल को देति' को आचार्य मम्मट के मत की अपेक्षा अधिक सकारात्मक, सुबोध और भावपूर्ण माना जा सकता है। इस प्रकार सोमनाथ का काव्य-प्रयोजन संस्कृत के आचार्यों से प्रभावित होते हुए भी मौलिकता पूर्ण है।

भिखारीदास : आचार्य भिखारीदास का प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ 'काव्य निर्णय' है। इय ग्रंथ में उन्होंने तपः सिद्धि, संपत्ति प्राप्ति, यशः प्राप्ति, आनंद की उपलब्धि, सहज रूप में शिक्षा की प्राप्ति को काव्य-प्रयोजन स्वीकार किया है। उनके प्रयोजन निरूपण पर आचार्य मम्मट का प्रभाव है। दास ने हिंदी के सुप्रसिद्ध कवियों के माध्यम से काव्य प्रयोजनों को स्पष्ट किया है।

एक लहै तपपुंजन को फल ज्यों तुलसी अरू सूर गोसाई।
एक लहै बहु संपति केसव भूषन ज्यों बर बीर बड़ाई।
एकन्ह को जस ही सों प्रयोजन हैं रसखानि रहीम की नाईं।
दास कबिन्तन की चर्चा बुधिवंतन को सुखदै सब ठाईं।।

(*काव्य निर्णय*, छंद सं. 10)

यहाँ यह माना जा सकता है कि हिंदी के कवियों को उद्धृत कर भिखारीदास हिंदी के स्वतंत्र काव्यशास्त्र को। व्यक्त करना चाहते हैं। आधुनिककाल में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य के विभिन्न पक्षों पर चिंतन किया है। वे लोक हित, आनंद तथा नीति एवं सात्विक भावों के उन्नयन को काव्य का प्रयोजन मानते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार आनंद एवं मंगल की सिद्धि काव्य का मूल एवं व्यापक प्रयोजन है, जिसके दो रूप हैं **(i) साधनावस्था,** और **(ii) सिद्धावस्था।** वे सौंदर्य के माध्यम से आनंद और लोकमंगल के विधान को प्रयोजन निरूपित करते हैं। शुक्लजी ने काव्य-प्रयोजनों का निरूपण प्रायः सामाजिक दृष्टि से किया है। चिंतामणि-भाग-एक के निबंध कविता क्या है? में काव्य के प्रयोजन को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है– ''कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है। कविता ही मनुष्य को प्रकृतदशा में लाती है और जगत के बीच उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई मनुष्यता की उच्चभूमि पर ले जाती है।'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है। द्विवेदी जी की काव्य-प्रयोजन संबंधी धारणा मुख्यतः मानवतावादी है। उन्होंने एक निबंध ही लिखा है जिसका शीर्षक ''मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।'' इस निबंध में वे लिखते हैं, या साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : आचार्य द्विवेदी वस्तुतः काव्य या कला का प्रयोजन जीवन के लिए मानते हैं। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी है। इस संदर्भ में उनका कथन द्रष्टव्य है'' साहित्य के उत्कर्ष या अपकर्ष के निकष की एकमात्र कसौटी यही हो सकती है कि वह मनुष्य का हित साधन करता है या नहीं। जिस बात के कहने से मनुष्य पशु-सामान्य धरातल के ऊपर नहीं उठता, वह त्याज्य है।''

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के काव्य-प्रयोजन संबंधी-चिंतन में भारतीय एवं पाश्चात्य

BHDC-106.indd 71 19-03-2021 08:51:35

विचारों का समन्वय है। उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य है जीवन के किसी मार्मिक स्वरूप या स्थिति का ज्ञान कराना। उनकी मान्यता है कि हास्य या मनोरंजन के लिए रचित साहित्य में युग का प्रतिनिधित्व नहीं होता। उनकी दृष्टि में साहित्य राष्ट्रीय जीवन के लिए उपयोगी है। निष्कर्षतः बाजपेयी जी की दृष्टि में आत्मानुभूति काव्य का प्रयोजन है।

डॉ. नगेन्द्र के काव्य-प्रयोजन संबंधी विचार मनोवैज्ञानिक तथ्यों से युक्त हैं। वे आत्माभिव्यक्ति को साहित्य का मूलतत्व मानते हैं। आत्माभिव्यक्ति से कवि या लेखक को सृजन-सुख की प्राप्ति होती है''। डॉ. नगेंद्र का कथन द्रष्टव्य है, ''आप इसे दोष मानिए या गुण; मेरी अंतर्मुखी प्रकृति आनंद से बढ़कर आत्म कल्याण अथवा लोक कल्याण की कल्पना करने में असमर्थ रही है।'' (*विचार और विवेचन*, पृ. 52) वस्तुतः डॉ. नगेंद्र व्यक्तित्व के संस्कार को काव्य का उद्देश्य मानते हैं।

डॉ. भगीरथ मिश्र के काव्य-प्रयोजन संबंधी विचारों में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्रीय चिंतन का समन्वय हैं। उन्होंने काव्य-प्रयोजनों को सात रूपों में विवेचित किया है –

(i) कला कला के लिए (ii) कला जीवन के लिए (iii) जीवन के पलायन के अर्थ (iv) मनोरंजन अथवा आनंद के लिए (v) सेवा के अर्थ (vi) आत्मसाक्षात्कार के अर्थ (vii) एक सृजनात्मक आवश्यकता की पूर्ति। डॉ. मिश्र की मूल मान्यता है कि काव्य एक सृजनात्मक आवश्यकता है।

5.4 सारांश

काव्य के तीन हेतु (कारण या साधन) हैं – प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास। भामह, वामन, हेमचंद्र पंडितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने प्रतिभा को विशेष महत्व प्रदान किया है तथा व्युत्पत्ति एवं अभ्यास को प्रतिभा का संस्कारक माना है। इन आचार्यों ने प्रतिभा को नैसर्गिक या जन्मजात स्वीकार किया है। व्युत्पत्ति के लिए निपुणता शब्द का व्यवहार किया गया है। लोक और शास्त्र का व्यापक ज्ञान तथा अनुभव व्युत्पत्ति में समाहित है। अभ्यास से प्रतिभा संस्कारित होती है और रचना में निखार आता है। बिना अभ्यास के प्रतिभा कुंठित हो जाती है। आचार्यों ने प्रतिभा के दो भेद किए हैं – सहजा और आहार्या या औपदेशकी। राजशेखर ने प्रतिभा के कारयित्री और भावयित्री नामक दो भेद किए हैं। संस्कृत के आचार्यों के आधार पर हिंदी के रीतिकालीन आचार्य-कवियों ने काव्य हेतुओं पर विचार किया है, जो प्रायः परम्परागत अधिक है। आधुनिक काव्य में हिंदी आलोचकों ने नवीन एवं व्यापक रूप में काव्य हेतुओं पर चिंतन किया है। काव्य के समुचित आस्वादन के लिए काव्य हेतुओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।

काव्य या साहित्य के संदर्भ में प्रयोजन का उल्लेखनीय महत्व आदि आचार्य भरत से पंडितराज जगन्नाथ तथा बाद के आचार्यों द्वारा निरूपित किया गया है। भरत, भामह आदि आरंमिक आचार्यों के प्रयोजन निरूपण में चारों पुरुषार्थों – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का महत्व स्वीकार किया गया किंतु परवर्ती आचार्यों नें यश, अर्थ प्राप्ति और आनन्द को विशेष महत्व दिया। आचार्य कुंतक ने लोकोत्तर चमत्कार – आनन्द की अनुभूति को काव्य का प्रयोजन सिद्ध किया है। आचार्य मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन माने यश प्राप्ति, अर्थ लाभ, व्यवहार ज्ञान, अशिव (अमंगल) का नाश, शीघ्र

उत्कृष्ट आनंद की प्राप्ति तथा कांता सम्मित उपदेश। मम्मट के प्रयोजनों के अंतर्गत लौकिक-अलौकिक, वैयक्तिक-सामाजिक, आंतरिक और बाध्य सभी का सामंजस्य है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों द्वारा बताया गया काव्य-प्रयोजन संस्कृत के आचार्यों द्वारा निरूपित काव्य-प्रयोजनों पर आधारित है। आचार्य सोमनाथ, भिखारीदास, कुलपति आदि ने काव्य-प्रयोजन पर विचार किया है।

आधुनिक काल में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे बाजपेयी, भगीरथ मिश्र आदि ने काव्य-प्रयोजनों पर चिंतन किया है। पाश्चात्य विचारकों ने भी अपने प्रतिपादित सिद्धांतों के अंतर्गत काव्य-प्रयोजनों पर विचार किया है।

5.5 अवधारणात्मक शब्द

काव्य हेतु : काव्य के कारण या हेतु भारतीय काव्यशास्त्र में चर्चा के विषय रहे हैं। यही रचना के मूल कारण हैं।

काव्य-प्रयोजन : कविता का उद्‌देश्य काव्य-प्रयोजन माना जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र में यश, अर्थ, आनन्द आदि को काव्य का प्रयोजन माना गया है। इसी प्रकार पाश्चात्य काव्य चिंतन में मानसिक चिकित्सा जीवन की आलोचना आदि को काव्य-प्रयोजन माना गया है।

काव्य प्रतिभा : संस्कृत काव्यशास्त्र काव्य रचना में प्रतिभा को सर्वोच्य महत्व देता है। सहजता प्रतिभा ही काव्य रचना को संभव बनाती है।

व्युत्पत्ति और अभ्यास : काव्य के हेतु है। आचार्य रूद्रट ने इन्हें काव्य हेतु माना है। दण्डी ने शास्त्र ज्ञान को व्युत्पत्ति माना है। यह अध्ययन से ही संभव हो पाती है।

5.6 उपयोगी पुस्तकें

उपाध्याय बलदेव (1991), *संस्कृत आलोचना*, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ।

कृष्णबल (1969), *भारतीय काव्यशास्त्र*, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली।

देवकीनंदन श्री वास्तव (1972), *काव्यशास्त्र चर्चा*, नंदन प्रकाशन, रानी कटरा, लखनऊ।

भगीरथ मिश्र, *काव्यशास्त्र*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर।

राजवंश सहाय 'हीरा', *भारतीय आलोचना शास्त्र*, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।

रामानन्द शर्मा (2016), *भारतीय काव्यशास्त्र*, लोकवाणी संस्थान, दिल्ली-93

शांतिस्वरूप गुप्त, *पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, अशोक प्रकाशन दिल्ली-6

सूर्यप्रसाद दीक्षित (सं.) (1997), *हिंदी का अपना काव्यशास्त्र*, विश्वविद्यालय हिंदी प्रकाशन, हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।

धीरेंद्र वर्मा, *हिंदी साहित्य कोश भाग-1*, ज्ञान मंडल लि. वाराणसी।

BHDC-106.indd 73 19-03-2021 08:51:35

5.7 बोध प्रश्न

1) प्रतिभा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2) व्युत्पति और अभ्यास का आशय समझाइए।
3) मम्मट की काव्य-प्रयोजन संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4) काव्य हेतुओं के महत्व और उपयोगिता पर विचार व्यक्त कीजिए।
5) काव्य-प्रयोजन का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए उपभाग 5.2.1
2) देखिए उपभाग 5.2.2
3) देखिए उपभाग 5.3.2
4) देखिए उपभाग 5.2.1
5) देखिए उपभाग 5.3.1

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

BHDC-106.indd 74 19-03-2021 08:51:35